भारतीय शास्त्रीय संगीत : परंपरा, परिवर्तन और समकालीन परिप्रेक्ष्य

डॉ. दुष्यन्त त्रिपाठी

विभागाध्यक्ष संगीत , स. धर्म राजकीय महाविद्यालय ब्यावर (राज.)

सार

भारतीय शास्त्रीय संगीत भारतीय उपमहाद्वीप का शास्त्रीय संगीत है । [1] इसे आम तौर पर शास्त्रीय संगीत और मार्ग संगीत जैसे शब्दों से वर्णित किया जाता है । [2] [3] इसकी दो प्रमुख परंपराएँ हैं: उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत जिसे हिंदुस्तानी के नाम से जाना जाता है और दक्षिण भारतीय अभिव्यक्ति जिसे कर्नाटक संगीत के नाम से जाना जाता है । [4] हिंदुस्तानी संगीत राग के सभी पहलुओं के अन्वेषण और सुधार पर जोर देता है , जबकि कर्नाटक संगीत प्रस्तुतियाँ आमतौर पर छोटी रचनाओं पर आधारित होती हैं। [4] हालांकि, दोनों प्रणालियों में अंतर की तुलना में अधिक समानताएँ हैं। [5] भारत के पूर्वी भाग की एक और अनूठी शास्त्रीय संगीत परंपरा ओडिसी संगीत है , जो पिछले दो हजार वर्षों में विकसित हुई है।

परिचय

भारतीय शास्त्रीय संगीत हजारों साल पुरानी एक समृद्ध परंपरा है, जो समय के साथ निरंतर विकसित हुई है। यह परंपरा आज पारंपरिक जड़ों से निकलकर आधुनिक और वैश्विक परिप्रेक्ष्य में नई पहचान बना रही है।

1. परंपरा: मूल आधार और ऐतिहासिक विकास

• वैदिक उत्पत्ति: भारतीय शास्त्रीय संगीत की जड़ें वेदों (विशेषकर सामवेद) और प्राचीन ग्रंथों जैसे भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र', मतंग मुनि की 'बृहद्देशी' और शारंगदेव की 'संगीत रत्नाकर' में मिलती हैं।[1,2,3]

• दो प्रमुख पद्धतियां: समय के साथ यह संगीत मुख्य रूप से दो धाराओं में विभाजित हुआ:

• हिन्दुस्तानी संगीत (उत्तर भारतीय): इसमें मुगल काल और फारसी संगीत का गहरा प्रभाव देखा गया, जहां ध्रुपद, ख्याल, ठुमरी और विभिन्न घरानों (जैसे ग्वालियर, किराना, जयपुर घराना) का विकास हुआ।

• कर्नाटक संगीत (दक्षिण भारतीय): यह परंपरा प्राचीन शुद्धता और मंदिर-आधारित संरचना के अधिक निकट रही है।

• गुरु-शिष्य परंपरा: ज्ञान का आदान-प्रदान सदियों तक 'गुरुकुल' और मौखिक गुरु-शिष्य परंपरा के माध्यम से हुआ, जिसमें संगीत के साथ-साथ अनुशासन और आत्मकेंद्रित साधना पर जोर दिया जाता था।

2. परिवर्तन: संरक्षण और स्वरूप में बदलाव

• राज्याश्रय से संस्थागत शिक्षा: राजा-महाराजाओं और नवाबों के संरक्षण के खत्म होने के बाद, 20वीं शताब्दी में विष्णु नारायण भातखंडे और विष्णु दिगंबर पलुस्कर जैसे विद्वानों ने संगीत को सम्मेलनों और महाविद्यालयों के माध्यम से आम जनता तक पहुंचाया।

• प्रस्तुति की अवधि में बदलाव: पहले पूरी रात चलने वाली महफिलें और बैठकें होती थीं जहाँ रागों का विस्तार कई घंटों तक चलता था। आधुनिक जीवनशैली, व्यस्त दिनचर्या और समय के आभाव में अब ये प्रस्तुतियां घटकर 45 मिनट या 1 घंटे की हो गई हैं।

• शिक्षण के माध्यम: पारंपरिक गुरुकुल व्यवस्था की जगह अब संगीत विद्यालय, कॉलेज और ऑनलाइन प्लेटफॉर्म्स ने ले ली है।

3. समकालीन परिप्रेक्ष्य: तकनीक, फ्यूजन और वैश्विक मंच[4,5,6]

• वैश्वीकरण और फ्यूजन: रविशंकर और अली अकबर खान जैसे दिग्गजों ने पश्चिमी देशों में भारतीय शास्त्रीय संगीत का प्रसार किया। आज के दौर में शास्त्रीय संगीत का पश्चिमी और इलेक्ट्रॉनिक संगीत के साथ मिलकर 'फ्यूजन' (Fusion) एक नया आकर्षण बन चुका है।

• डिजिटल युग और सोशल मीडिया: आज के डिजिटल और सोशल मीडिया युग (यूट्यूब, स्ट्रीमिंग ऐप्स) ने शास्त्रीय संगीत को घर-घर और युवाओं तक पहुँचा दिया है।

• ऑल इंडिया रेडियो और मंच: आल इंडिया रेडियो (All India Radio) और टिकट वाले संगीत समारोहों ने कलाकारों को नई आजीविका और वैश्विक पहचान दिलाई है।

इस पूरी यात्रा में भारतीय शास्त्रीय संगीत ने अपनी आत्मा और मौलिकता को बचाए रखते हुए खुद को समय के अनुकूल ढाला है।

विचार–विमर्श

भारतीय शास्त्रीय संगीत भारतीय संस्कृति, अध्यात्म और सौंदर्यबोध का गहन प्रतीक है, जिसकी परंपरा सदियों से निरंतर प्रवाहित होती आ रही है। वैदिक काल से आरंभ होकर यह संगीत आज के डिजिटल युग तक अपनी विशिष्टता बनाए हुए है। आधुनिक परिवेश में तकनीकी प्रगति, वैश्वीकरण और सांस्कृतिक अंतःक्रिया ने इसकी संरचना, प्रस्तुति और शिक्षण पद्धति को नए रूपों में ढाला है। यह शोध भारतीय शास्त्रीय संगीत की पारंपरिक विरासत और आधुनिक माध्यमों में उसके पुनर्संयोजन की प्रक्रिया का विश्लेषण करता है। अध्ययन इस बात पर केंद्रित है कि किस प्रकार डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म, फ़्यूज़न शैलियाँ और आधुनिक संगीत तकनीकें परंपरा को नष्ट करने के बजाय उसे नए जीवन और वैश्विक पहचान प्रदान कर रही हैं। यह शोध परंपरा और नवाचार के संतुलन की खोज के माध्यम से संगीत के सतत विकास को समझने का प्रयास है।

भारतीय विरासत और संस्कृति

हम शास्त्रीय संगीत की दो पद्धतियों को पहचानते हैं: हिंदुस्तानी एवं कर्नाटक। कर्नाटक संगीत कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु और केरल तक सीमित है। शेष देश के शास्त्रीय संगीत का नाम हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत है। निःसंदेह कर्नाटक और आंध्र में कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ हिंदुस्तानी शास्त्रीय पद्धति का भी अभ्यास किया जाता है। सामान्य रूप से ऐसा माना जाता है कि तेरहवीं शताब्दी से पूर्व भारत का संगीत कुल मिलाकर एकसमान है, बाद में जो दो पद्धतियों में विभाजित हो गया था।

भारतीय संगीत के इतिहास में भरत का नाट्यशास्त्र एक महत्त्वपूर्ण सीमाचिह्न है। नाट्यशास्त्र एक व्यापक रचना या ग्रंथ है जो प्रमुख रूप से नाट्यकला के बारे में है लेकिन इसके कुछ अध्याय संगीत के बारे में हैं। इसमें हमें सरगम, रागात्मकता, रूपों और वाद्यों के बारे में जानकारी मिलती है। तत्कालीन समकालिक संगीत ने दो मानक सरगमों की पहचान की। इन्हें ग्राम कहते थे। 'ग्राम' शब्द संभवतः किसी समूह या संप्रदाय उदाहरणार्थ एक गाँव के विचार से लिया गया है। यही संभवतः स्वरों की ओर ले जाता है जिन्हें ग्राम कहा जा रहा है। इसका स्थूल रूप से सरगमों के रूप में अनुवाद किया जा सकता है।

उस समय दो ग्राम प्रचलन में थे। इनमें से एक को षडज ग्राम और अन्य को मध्यम ग्राम कहते थे। दोनों के बीच का अंतर मात्र एक स्वर पंचम में था। अधिक सटीक रूप से कहें तो हम यह कह सकते हैं कि मध्यम ग्राम में पंचम षडज ग्राम के पंचम से एक श्रुति नीचे था।[7,8,9]

इस प्रकार से श्रुति मापने की एक इकाई है या एक ग्राम अथवा एक सरगम के भीतर विभिन्न क्रमिक तारत्वों के बीच एक छोटा–सा अंतर है। सभी व्यावहारिक प्रयोजनों के लिये इनकी संख्या 22 बताई जाती है। प्रत्येक ग्राम से अनुपूरक सरगम लिये गए हैं। इन्हें

मूर्छना कहते हैं। ये एक अवरोही क्रम में बजाए या गाए जाते हैं। एक सरगम में सात मूलभूत स्वर होते हैं, अतः सात मूर्छना हो सकते हैं।

लगभग ग्यारहवीं शताब्दी से मध्य और पश्चिम एशिया के संगीत ने भारत की संगीत की परंपरा को प्रभावित करना शुरू कर दिया था। धीरे–धीरे इस प्रभाव की जड़ गहरी होती चली गई और कई परिवर्तन हुए। इनमें से एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन था– ग्राम और मूर्छना का लुप्त होना।

लगभग 15वीं शताब्दी के आसपास, परिवर्तन की यह प्रक्रिया सुस्पष्ट हो गई थी, ग्राम पद्धति अप्रचलित हो गई थी। मेल या थाट की संकल्पना ने इसका स्थान से लिया था। इसमें मात्र एक मानक सरगम है। सभी ज्ञात स्वर एक सामान्य स्वर 'सा' तक जाते हैं।

लगभग अठारहवीं शताब्दी तक यहाँ तक कि हिंदुस्तानी संगीत के मानक या शुद्ध स्वर भिन्न हो गए थे। अठारहवीं शताब्दी से स्वीकृत, वर्तमान स्वर हैः

सा रे ग म प ध नि

वर्तमान में प्रचलित कुछ प्रमुख शैलियाँ

'ध्रुपद', 'धमर', 'होरी', 'ख्याल', 'टप्पा', 'चतुरंग', 'रससागर', 'तराना', 'सरगम' और 'ठुमरी' जैसी हिंदुस्तानी संगीत में गायन की दस मुख्य शैलियाँ हैं।

धुपद

यह हिंदुस्तानी संगीत के सबसे पुराने और भव्य रूपों में से एक है। यह नाम 'ध्रुव' और 'पद' शब्दों से मिलकर बना है जो कविता के छंद रूप और उसे गाने की शैली दोनों को प्रदर्शित करते हैं।

अकबर के शासनकाल में तानसेन और बैजूबावरा से लेकर ग्वालियर के राजा मान सिंह तोमर के दरबार तक ध्रुपद गाने वाले प्रवीण गायकों के साक्ष्य मिलते हैं। यह मध्यकाल में गायन की प्रमुख विधा बन गई, परंतु 18वीं शताब्दी में यह ह्रास की स्थिति में पहुँच गई।

ध्रुपद एक काव्यात्मक रूप है, जिससे राग को सटीक तथा विस्तृत शैली में प्रस्तुत किया गया है। ध्रुपद में संस्कृत अक्षरों का उपयोग किया जाता है और इसका उद्गम मंदिरों से हुआ है।

ध्रुपद रचनाओं में सामान्यतः 4 से 5 पद होते हैं, जो युग्म में गाए जाते हैं। सामान्यतः दो पुरुष गायक ध्रुपद शैली का प्रदर्शन करते है। तानपुरा और पखावज सामान्यतः इनकी संगत करते है। वाणी या बाणी के आधार पर, ध्रुपद गायन को आगे और चार रूपों में विभाजित किया जा सकता है।

डागरी घराना

इस शैली में आलाप पर बहुत बल दिया जाता है। ये डागर वाणी में गायन करते हैं। डागर मुसलमान गायक होते हैं, लेकिन सामान्यतः हिंदू देवी–देवताओं के पाठों का गायन करते हैं। उदाहरण के लिये, जयपुर के गुन्देचा भाई।

दरभंगा घराना[10,11,12]

इस घराने में ध्रुपद खंडार वाणी और गौहर वाणी में गायन होता है। ये रागालाप पर बल देते है और साथ ही तात्कालिक अलाप पर गीतों की रचना करते हैं।

इस शैली का प्रतिनिधि मलिक परिवार है। इस घराने के कुछ प्रसिद्ध गायक हैं– राम चतुर मलिक, प्रेम कुमार मलिक और सियाराम तिवारी।

बेतिया घराना

यह घराना केवल परिवार के भीतर प्रशिक्षित लोगों को ज्ञात कुछ अनोखी तकनीकों वाली 'नौहर और खंडार वाणी' शैलियों का प्रदर्शन करता है। इस शैली का प्रतिनिधि मिश्र परिवार है। इस शैली के गायक हैं–इंद्र किशोर मिश्रा। इसके अतिरिक्त बेतिया और दरभंगा शैलियों में प्रचलित ध्रुपद का रूप हवेली शैली के रूप में जाना जाता है।

तलवंडी घराना

यहाँ खण्डर वाणी गाई जाती है चूँकि यह परिवार पाकिस्तान में स्थित है इसलिये इसे भारतीय संगीत व्यवस्था में शामिल करना कठिन हो जाता है।

घराना प्रणाली

घराना वंश या प्रशिक्षुता और विशेष संगीत शैली के अनुपालन द्वारा संगीतकारों या नर्तक/नर्तकियों को जोड़ने वाली सामाजिक संगठन की एक प्रणाली है।

घराना शब्द उर्दू/हिंदी शब्द 'घर' से लिया गया है जिसका अर्थ 'परिवार' या 'घर' होता है। यह सामान्यतः उस स्थान को इंगित करता है जहाँ से या संगीतात्मक विचारधारा उत्पन्न हुई है। घराने व्यापक संगीत शास्त्रीय विचारधारा को दर्शाते हैं और इनमें एक शैली से दूसरी शैली में अंतर होता है।

यह प्रत्यक्ष रूप से संगीत की समझ, शिक्षण, प्रदर्शन एवं प्रशंसा को प्रभावित करते है।

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के गायन के लिये प्रसिद्ध घरानों में से निम्न घराने शामिल होते हैं: आगरा, ग्वालियर, इंदौर, जयपुर, किराना, और पटियाला।

खयाल (ख्याल)

'खयाल' (ख्याल) शब्द फारसी भाषा से लिया गया है, इसका अर्थ होता है 'विचार या कल्पना'। इस शैली के उद्भव का श्रेय अमीर खुसरो को दिया जाता है। संगीत का यह रूप कलाकारों के बीच काफी लोकप्रिय है। खयाल (ख्याल) दो से लेकर आठ पंक्तियों वाले लघु गीतों के रंग पटल पर आधारित है। सामान्य तौर पर खयाल (ख्याल) रचना को 'बंदिश' के रूप में भी जाना जाता है।[13,14,15]

15वीं सदी में सुल्तान मोहम्मद शर्की खयाल (ख्याल) के सबसे बड़े संरक्षक हुए। खयाल (ख्याल) की सबसे अनूठी विशेषता यह है कि इसमें तान का उपयोग किया जाता है। इसी कारण है कि ध्रुपद की तुलना में खयाल संगीत में आलाप को कम महत्त्व दिया जाता है। खयाल में दो प्रकार के गीतों का उपयोग किया जाता है।

बड़ा खयाल: धीमी गति में गाया जाने वाला

छोटा खयाल: तेज़ गति में गाया जाने वाला

असाधारण खयाल रचनाएँ भगवान कृष्ण की स्तुति में की जाती हैं। खयाल संगीत के अंतर्गत प्रमुख घराने हैं:

ग्वालियर घराना: यह सबसे पुराने और सबसे बड़े खयाल घरानों में से एक है। यह बहुत कठोर नियमों का पालन करता है क्योंकि यहाँ रागमाधुर्य और लय पर समान बल दिया जाता है। हालाँकि इसका गायन बहुत जटिल है, फिर भी यह सरल रागों के प्रदर्शन को वरीयता देता है। इस घराने के सबसे अधिक लोकप्रिय गायक नाथू खान और विष्णु पलुस्कर हैं।

किराना घराना: इस घराने का नामकरण राजस्थान के 'किराना' गाँव के नाम पर हुआ है। इसकी स्थापना नायक गोपाल ने की थी लेकिन 20वीं सदी की शुरुआत में इसे लोकप्रिय बनाने का श्रेय अब्दुल करीम खान और अब्दुल वाहिद खान को जाता है।

'किराना' घराना धीमी गति वाले रागों पर इनकी प्रवीणता के लिये प्रसिद्ध है। ये रचना की मधुरता और गीत में पाठ के उच्चारण की स्पष्टता पर बहुत अधिक बल देते हैं। ये पारंपरिक रागों या सरगम के उपयोग को महत्त्व देते हैं। इस शैली के कुछ प्रसिद्ध गायकों में पंडित भीमसेन जोशी और गंगू बाई हंगल जैसे महान कलाकार शामिल हैं।

आगरा घरानाः इतिहासकारों के अनुसार 19वीं सदी में खुदा बख्श ने इस घराने की स्थापना की थी, परंतु संगीतविदों का मानना है कि इसके संस्थापक हाजी सुजान खान थे। फैयाज खान ने नवीन और गीतात्मक स्पर्श देकर इस घराने को पुनर्जीवित करने का काम किया। तब से इसका नाम रंगीला घराना पड़ गया। वर्तमान में इस शैली के प्रमुख गायकों में सी.आर. व्यास और विजय किचलु जैसे महान गायक आते हैं।

पटियाला घरानाः बड़े फतेह अली खान और अली बख्श खान ने 19वीं सदी में इस घराने की शुरुआत की थी। इसे पंजाब में पटियाला के महाराजा का समर्थन प्राप्त हुआ। शीघ्र ही उन्होंने गजल, ठुमरी और खयाल के लिये प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली। वे बृहत्तर लय के उपयोग पर बल देते थे। चूँकि उनकी रचनाओं में भावनाओं पर बल होता था अतः उनका रुझान अपने संगीत में अलंकरण या अलंकारों के उपयोग पर अधिक होता था। वे जटिल तानों पर बल देते थे।

इस घराने के सबसे प्रसिद्ध संगीतकार बड़े गुलाम अली खान साहब थे। वे भारत के प्रसिद्ध हिन्दुस्तानी शास्त्रीय गायकों में से एक थे। वे राग दरबारी के गायन के लिये प्रख्यात थे। यह घराना तराना शैली के अद्वितीय तान, गमक और गायकी के लिये प्रसिद्ध है।

भिंडी बाज़ार घरानाः छज्जू खान, नजीर खान और खादिम हुसैन ने 19वीं सदी में इसकी स्थापना की थी। उन्होंने लंबी अवधि तक अपनी सांस नियंत्रित करने में प्रशिक्षित गायकों के रूप में लोकप्रियता और ख्याति प्राप्त की। इस तकनीक का उपयोग करते हुए ये कलाकार एक ही सांस में लंबे–लंबे अंतरे गा सकते हैं। इसके अतिरिक्त इसकी एक अन्य प्रमुख विशेषता यह है कि ये अपने संगीत में कुछ कर्नाटक रागों का भी उपयोग करते हैं।

ठुमरी[16,17,18]

यह मिश्रित रागों पर आधारित है और इसे सामान्यतः अर्द्ध–शास्त्रीय भारतीय संगीत माना जाता है। इसकी रचनाएँ भक्ति आंदोलन से अधिक प्रेरित है कि इसके पाठों में सामान्यतः कृष्ण के प्रति गोपियों के प्रेम को दर्शाया जाता है। इसकी रचनाओं की भाषा सामान्य तौर पर हिंदी या अवधी या ब्रज भाषा होती है।

इन्हें प्रायः महिला गायक द्वारा गाया जाता है। यह अन्य रूपों की तुलना में अलग है क्योंकि ठुमरी में निहित कामुकता विद्यमान होती है। दादरा, होरी, कजरी, सावन, झूला और चौती जैसे हल्के–फुल्के रूपों के लिये भी ठुमरी नाम का प्रयोग किया जाता है। मुख्य रूप से ठुमरी दो प्रकार की होती हैंः

पूर्वी ठुमरीः इसे धीमी गति से गाया जाता है।

पंजाबी ठुमरीः इसे तेज़ गति एवं जीवंत तरीके से गाया जाता है।

ठुमरी के मुख्य घराने बनारस और लखनऊ में स्थित हैं और ठुमरी गायन में सबसे प्रसिद्ध स्वर बेगम अख्तर का है जो गायन में अपनी कर्कश आवाज़ और असीम तान के लिये प्रसिद्ध हैं।

टप्पा शैली

इस शैली में लय बहुत महत्त्वपूर्ण होती है क्योंकि रचना तीव्र, सूक्ष्म और जटिल होती हैं। इसका उद्भव उत्तर–पश्चिम भारत के ऊट सवारों के लोक गीतों से हुआ था लेकिन सम्राट मुहम्मद शाह के मुगल दरबार में प्रवेश करने पर इसे अर्द्ध–शास्त्रीय स्वरीय विशेषता के रूप में मान्यता प्रदान इ गई। इसमें मुहावरों का बहुत तीव्र और बड़ा ही घुमावदार उपयोग किया जाता है।

टप्पा ना केवल अभिजात वर्ग बल्कि विनम्र वाद्य यंत्र वाले वर्गों की भी पसंदीदा शैली है। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध तथा 20वीं सदी के प्रारम्भ में बैठकी शैली का विकास हुआ।

वर्तमान समय में यह शैली प्रायः विलुप्त होती जा रही है तथा इसका अनुसरण करने वाले बेहद कम लोग बचे हैं। इस शैली के कुछ प्रसिद्ध गायक हैं– मियां सोदी, ग्वालियर के पंडित लक्ष्मण राव और शन्नो खुराना।

तराना शैली

इस शैली में लय बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। इसकी संरचना लघु एवं कई बार दोहराए जाने वाले रागों से निर्मित होती है। इसमें तीव्र गति से गाए जाने वाले कई शब्दों का प्रयोग होता है। यह लयबद्ध विषय बनाने पर केंद्रित होता है और इसलिये गायक के लिये लयबद्ध हेरफेर में विशेष प्रशिक्षण एवं कौशल की आवश्यकता होती है। वर्तमान में विश्व के सबसे तेज़ तराना गायक मेवाती घराने के पंडित रतन मोहन शर्मा है। श्रोताओं द्वारा इन्हें 'तराना के बादशाह' (तराना के राजा) की पदवी भी दी गई है।

धमर–होरी शैली

ध्रुपद ताल के अलावा यह शैली ध्रुपद से काफी समानता रखती है। यह बहुत ही संगठित शैली है और इसमें 14 तालों का चक्र होता है जिनका अनियमित रूप से उपयोग किया जाता है। इसकी रचनाएँ प्रकृति में सामान्यतः भक्तिपरक होती हैं और भगवान कृष्ण से संबंधित होती हैं। कुछ अधिक लोकप्रिय गीत होली त्योहार से संबंधित हैं इसी कारण वश इसकी कई रचनाओं में शृंगार रस नज़र आता है।

गजल[17,18]

यह एक काव्यात्मक रूप है इसे क्षति या वियोग की पीड़ा और उस पीड़ा के होते हुए भी प्रेम की सुंदरता की काव्यात्मक अभिव्यक्ति के रूप में देखा जा सकता है। इसका उद्भव 10वीं सदी में ईरान में हुआ, माना जाता है।

12वीं सदी में सूफी रहस्यवादियों और नए इस्लामी सल्तनत के दरबारों के प्रभाव के चलते दक्षिण एशिया में इसका प्रसार हुआ, परंतु मुगल काल में यह अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई। ऐसा माना जाता है कि अमीर खुसरो गजल के सबसे पहले प्रतिपादकों में से एक थे। कई प्रमुख ऐतिहासिक गजल कवि या तो स्वयं को सूफी (जैसे रूमी या हाफ़िज़) कहते थे, या सूफी विचारों के साथ सहानुभूति रखते थे।

गजल का एकमात्र विषय– प्रेम (विशेष रूप से बिना किसी शर्त के सर्वोच्च प्रेम) होता है। भारतीय उप–महाद्वीप के गज़लों पर इस्लामी रहस्यवाद का प्रभाव है।

परिणाम

भारतीय शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति 6,000 साल पहले के पवित्र वेदों में पाई जा सकती है, जिन्होंने संगीत नोट्स और लयात्मक संरचनाओं की आधारशिला रखी।

शुरुआत से ही, भारतीय शास्त्रीय संगीत प्रकृति से गहराई से जुड़ा रहा है। इसका प्रेरणा प्राकृतिक घटनाओं से प्राप्त होती है, जैसे कि मौसम और दिन के समय, जिन्होंने रागों या संगीत भावनाओं और तालों का निर्माण किया, जिन्हें और भी व्यवस्थित किया गया।

भारतीय शास्त्रीय संगीत की रचनाएँ निश्चित होती हैं, लेकिन अधिकांश संगीत नोट्स और गणित की संरचना के भीतर सुधारित होती हैं, जिससे हर प्रदर्शन बेहद अनूठा बनता है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत परंपरा में, ज्ञान और कौशल वर्षों तक एक शिक्षक या 'गुरु' से छात्र को मौखिक रूप से सौंपे जाते हैं। इस प्रक्रिया में शिक्षक और छात्र के बीच एक अनूठा, आध्यात्मिक बंधन बनता है, साथ ही संगीत के सभी पहलुओं को आत्मसात किया जाता है।

हालांकि आजकल, भारतीय शास्त्रीय संगीत कई संस्थानों में सीखा जा सकता है और इसका भारी दस्तावेजीकरण किया गया है, फिर भी अवलोकन, सुनने और स्मृति के माध्यम से सीखना अभी भी महत्वपूर्ण है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत का एक समृद्ध और आकर्षक इतिहास है, जिसका विकास परंपरा, नवाचार, और बाहरी प्रभावों के निरंतर मिश्रण का प्रमाण है।[15,16,17]

भारतीय संगीत के शुरुआती बीज वेदों के पवित्र मंत्रों में मिलते हैं (1000 BCE — 500 CE)। सामवेद में मंत्रों की स्वरबद्ध प्रस्तुति ने "स्वर" (संगीत नोट्स) के अवधारणा की नींव रखी। 2nd-3rd सदी CE की संस्कृत पाठ "नाट्य शास्त्र" द्वारा भरत मुनि ने संगीत के सिद्धांतात्मक ढांचे की स्थापना की, जिसमें "राग" (संगीतिक मोड) और "ताल" (लयात्मक चक्र) की अवधारणाएँ शामिल थीं।

500 CE से 1500 CE के काल में, क्षेत्रीय प्रभावों ने भारत भर में विशिष्ट शैलियाँ विकसित कीं। दक्षिण भारत में मंदिर संगीत परंपराएँ समृद्ध हुईं, जबकि उत्तर भारत में फारसी और मध्य एशियाई संगीत के प्रभाव देखे गए। इस अवधि में भारतीय शास्त्रीय संगीत की दो मुख्य धाराएँ भी प्रकट हुईं: उत्तर में हिंदुस्तानी और दक्षिण में कर्नाटक।

मुगल काल (1500 CE — 1800 CE) में भारतीय और फारसी संगीत परंपराओं के बीच विचारों का अद्भुत आदान-प्रदान देखा गया। मुगल सम्राटों ने कला के प्रति अपनी प्रेमभावना दिखाते हुए एक समृद्ध संगीत वातावरण को बढ़ावा दिया, जिसमें तानसेन और बैजू बावरा जैसे प्रसिद्ध संगीतकारों ने अद्भुत कृतियाँ रचीं।

औपनिवेशिक काल (1800 CE — वर्तमान) में भारतीय शास्त्रीय संगीत परंपराओं को व्यवस्थित और दस्तावेजित करने के प्रयास हुए। 19वीं सदी में इस कला रूप के प्रति रुचि का पुनरुद्धार हुआ, और इसे संरक्षित और सिखाने के लिए संस्थान स्थापित किए गए। 20वीं और 21वीं सदी में, भारतीय शास्त्रीय संगीत ने नए रास्तों को अपनाया। संगीतकार फ्यूजन शैलियों के साथ प्रयोग कर रहे हैं, इलेक्ट्रॉनिक तत्वों को शामिल कर रहे हैं, और अन्य परंपराओं के कलाकारों के साथ सहयोग कर रहे हैं, जिससे यह कला रूप समकालीन दर्शकों के लिए जीवंत और प्रासंगिक बना हुआ है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत का विकास अपनी जटिल धुनों, जटिल लयों, और गहन भावनात्मक गहराई के साथ श्रोताओं को मंत्रमुग्ध करता है। जैसे-जैसे यह विकसित होता रहता है, एक बात स्थिर रहती हैः यह हमें हमारी समृद्ध धरोहर से जोड़ने और शाश्वत भावनाओं को जागृत करने की शक्ति बनाए रखता है।

जीवन की संगीतः प्रभाव और प्रासंगिकता

भारतीय शास्त्रीय संगीत भारतीय संस्कृति के मूल में बसी एक जीवंत कृति है, एक शक्तिशाली कला रूप जो आत्मा को छूता है। यह "जीवन की संगीत" आज की दुनिया में अत्यधिक महत्व रखती है, व्यक्तिगत और सामाजिक स्तर पर गहरा प्रभाव डालती है।[17,18]

भारतीय शास्त्रीय संगीत सीखना एक परिवर्तनकारी यात्रा है। इसमें अनुशासन, एकाग्रता, और आत्म के साथ गहरा जुड़ाव की आवश्यकता होती है। इसके रागों और तालों के माध्यम से, यह भक्ति, प्रेम, और मानव अनुभव की कहानियाँ सुनाता है। भारतीय शास्त्रीय संगीत का अध्ययन और सराहना हमें हमारी समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर से जोड़ती है और हमारे जड़ों को गहराई से समझने में मदद करती है।

निष्कर्ष

भारतीय शास्त्रीय संगीत लगातार विकसित हो रहा है, नए प्रभावों और समकालीन संवेदनाओं के अनुसार अनुकूलित हो रहा है, ताकि यह नए पीढ़ियों के लिए प्रासंगिक और आकर्षक बना रहे।

एक दुनिया में जो तेजी से विभाजित हो रही है, संगीत लोगों को एक साथ लाने का एक शक्तिशाली उपकरण प्रदान करता है। अंततः, भारतीय शास्त्रीय संगीत केवल मनोरंजन नहीं है; यह जीवन का एक तरीका है। यह व्यक्तियों को आकार देता है, समुदायों को समृद्ध करता है, और हमें हमारे अतीत और वर्तमान से जोड़ता है। इसके प्रभाव और प्रासंगिकता को समझकर, हम यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि यह "जीवन की संगीत" आने वाली पीढ़ियों के लिए गूंजती रहे।[18]

संदर्भ

1. Nettl et al. 1998, pp. 573–574.
2. Sorrell & Narayan 1980, pp. 3–4.
3. Sorrell & Narayan 1980, pp. 4–5.
4. Rowell 2015, pp. 9–10, 59–61.
5. Beck 2012, pp. 107–108, Quote: "The tradition of Indian classical music and dance known as Sangeeta is fundamentally rooted in the sonic and musical dimensions of the Vedas (Sama veda), Upanishads and the Agamas, such that Indian music has been nearly always religious in character".
6. Rens Bod (2013). A New History of the Humanities: The Search for Principles and Patterns from Antiquity to the Present. Oxford University Press. p. 116. ISBN 978-0-19-164294-4.
7. Reginald Massey; Jamila Massey (1996). The Music of India. Abhinav Publications. p. 42. ISBN 978-81-7017-332-8. Retrieved 23 July 2013.
8. Sorrell & Narayan 1980, pp. 1–3.
9. Nettl 2010.
10. James B. Robinson (2009). Hinduism. Infobase Publishing. pp. 104–106. ISBN 978-1-4381-0641-0.
11. Vijaya Moorthy (2001). Romance of the Raga. Abhinav Publications. pp. 45–48, 53, 56–58. ISBN 978-81-7017-382-3.
12. "Austin IFA : Introduction to Carnatic Music". austinifa.org. Retrieved 30 July 2018.
13. "Music". Ravi Shankar. Archived from the original on 22 October 2019. Retrieved 30 July 2018.
14. "Music (GCSE – Indian music and Gamelan)". trinity.nottingham.sch.uk. Archived from the original on 30 July 2018. Retrieved 30 July 2018.

15. Ramanathan, N (2007). Rao, Pappu Venugopala (ed.). "Saṅgīta in Saṅgītaratnākara and Karṇāṭaka-Saṅgīta". The Journal of the Music Academy Madras. 79. (Old No. 306) New No, 168, TTK Road, Royapettah, Channai 600 014: N. Murali on behalf of The Music Academy Madras (published 2008): 77–82. ISSN 0970-3101. Saṅgīta is defined in Saṅgītaratnākara [c. 1250-AD] as a combination of 'gītam', 'vādyam', and ' nṛttam'. This definition of 'saṅgītam' certainly does not denote 'music' as normally understood. What is Saṅgītam then? It is a theatrical presentation of an art form consisting of 'gīta', meaning the tonal form of music; 'vādya', meaning the syllabic form created by drums; and 'nṛtta', meaning, the visual form created by the movement of the limbs of the body, namely, dance. Although the term 'vādya' signifies 'musical instruments' in general, as a constituent of 'saṅgīta' it denotes the 'syllabic form' created by the drum instruments (avanaddha-vādya).

16. William Forde Thompson (2014). Music in the Social and Behavioral Sciences: An Encyclopedia. Sage Publications. pp. 1693–1694. ISBN 978-1-4833-6558-9.

17. Beck 1993, pp. 107–109, Quote: "it is generally agreed that Indian music indeed owes its beginnings to the chanting of the Sama–Veda, the vast collection of verses (Sama), many from the Rig–veda itself, set to melody and sung by singer–priests known as udgata"..

18. Frits Staal (2009), Discovering the Vedas: Origins, Mantras, Rituals, Insights, Penguin, ISBN 978-0-14-309986-4, pp. 4–5